International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

‘गङ्गासागरीयम्’ महाकाव्य की कथावस्तु एवं रस निष्पत्ति

कार्तिक पण्ड्या

[1]संशोधन अधिकारी, संशोधन-प्रकाशन विभाग, श्री सोमनाथ संस्कृत युनिवर्सिटी, वेरावल, जिल्ला – गीर-सोमनाथ, गुजरात - 362265

Abstract:
गङ्गासागरीयम् पं. विष्णुदत्त शुक्ल प्रणीत संस्कृत की एक आधुनिक/अद्यतन कृति है। यह वस्तुतः एक रसात्मक महाकाव्य है। नायक नायिका की समासोक्ति प्रस्तुति के साथ ही दैत्य कार्य का भी काव्य में समावेश हुआ है। गंगा को नायिका, समुद्र को नायक तथा मेघ को दूत बनाकर प्रस्तुत किया गया है। गंगा और सागर, दूत के माध्यम से एक दूसरे के गुण सौन्दर्य का श्रवण करते है और उसमें पारस्परिक आकर्षण उत्पन्न होता है।

Keywords: गंगा, अर्वाचीन, काव्यशास्त्रीय

गंगा वैदिक कालीन सप्त सैन्धव प्रदेश की पूर्वी सीमान्त नदी थी, जिसका पूर्व से पश्चिम की प्रमुख नदियों के साथ गंगा तटवासी जन (गाङ्ग्य) के रूप में उल्लेख हुआ है। गंगा के लिये इस समय प्रयुक्त अन्य अभिधान जाह्नवी का भी ऋग्वेद में तथा शतपथ ब्राह्मण १३/४/५/११ के अतिरिक्त उपनिषद ग्रन्थों में भी उल्लेख हुआ है। यद्यपि गंगा और यमुना का उल्लेख सिन्धु की सहायक तथा सरस्वती आदि नदियों के साथ हुआ है, तथापि वैदिक कालिन सप्त सैन्धव प्रदेश की प्रधान सात नदियों के समान इन्हे उतना महत्त्व नहीं मिला है, जितना सरस्वती, शुतुद्रि, परूष्णी, विपाशा, असिक्नी, वितस्ता, सिन्धु को। गंगा वर्णन की साहित्यिकता सर्वत्र संलक्ष्य है। गंगा से सम्बद्ध संस्कृत वाङ्मय में अनेक रूप है।

(१) वैदिक गंगा
(२) पौराणिक गंगा
(३) स्त्रोतात्मक एवं अर्वाचीन काव्य में वर्णित गंगा

अर्वाचीन संस्कृत काव्यों में गंगा गौरव सशक्त रूप से प्रतिपादित है। इन काव्यों में अनेक काव्यशास्त्रीय, छन्दःशास्त्रीय एवं वर्ण्य विषयगत विद्यमान है, जिनसें इन काव्यकृतियों की पर्याप्त प्रभावशालिता परिलक्षित है। इन काव्य कृतियों में कविवर स्व.पं. विष्णुदत्त शुक्ल विरचित ‘गङ्गासागरीयम्’, अर्वाचीन संस्कृत कवययत्री डॉ. कमला पाण्डेय प्रणीत ‘रक्षतगङ्गाम्’, साहित्यवारिधि डॉ. कैलाशनाथ द्विवेदी कृत ‘गङ्गागरिमा’, सुकवि विश्वेश्वर विद्याभुषण प्रणीत ‘गङ्गासुरतरङ्गिणी’, प्राचार्य के.वी.एन. अप्पाराव रचित ‘गङ्गालहरी’, सुविख्यात राजनेता चक्रवर्ती श्री राजगोपालाचार्य विरचित ‘गङ्गातरङ्गम्’, डॉ. मंजुलता शर्मा रचित ‘गङ्गे’ आदि उल्लेखनीय है।

इन अर्वाचीन सशक्त संस्कृत काव्य रचनाओं से गंगा का दिव्य स्वरूप एवं अनुपम माहात्म्य लोक मानस में प्रतिष्ठापित हुआ है, जिसमें गंगा भारत की नहीं, अपितु विश्व की सर्वश्रेष्ठ नदियों में मूर्धन्य मानी जाती है।

‘गङ्गासागरीयम्’ स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी आदरणीय शुक्ल जी की एक रसात्मक रचना है। जिसे पढ़कर मस्तिष्क में

कविकुलगुरु कालिदास की प्रतिभा का स्मरण होने लगता है इस काव्य का कथानक तो पौराणिक कथा पर आधारित है परन्तु कवि ने अपनी मौलिक प्रतिभा के द्वारा इसमें अनेक परिवर्तन कर दिये है, फिर भी कथा की आत्मा पूर्ण रूप से सुरक्षित है।

'गङ्गासागरीयम्' के रचयिता पं. विष्णुदत्त शुक्ल का जन्म सन १८८५ ई.में उत्तर प्रदेश के उन्नाव जनपद में स्थित कर्नाईपुर नामक गाँव में हुआ था। उनके पूज्य पिता पं. मिश्री लाल शुक्ल और माता का नाम शिवरानी देवी शुक्ल था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा - दीक्षा उन्नाव में तत्पश्चात् उच्च शिक्षा वाराणसी के बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में सम्पन्न हुई। आचार्य जे.वी.कृपलानी और डॉ. सम्पूर्णानन्द की प्रेरणा से कालान्तर में काशी विद्यापीठ में भी शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् अध्यापन कार्य भी किया। पं. विष्णुदत्त शुक्ल आदर्श अध्यापक, उत्साही, साहसी, स्वाधीनता, सेनानी तथा दैनिक प्रताप एंव सहयोगी नामक पत्रों से जुडे एक निर्भीक पत्रकार, समर्पित साहित्य प्रेमी और श्रेष्ठ सामाजिक कार्यकर्ता थे। श्री शुक्ल निश्चल हृदय के हास, परिहास, प्रिय परम विनोद एवं जीवन्त सत् पुरुष थे। आजीवन अर्थाभाव अनुभव करते हुए भी ये जीवन संघर्ष से कभी विमुख नहीं हुए और कर्मठतापूर्वक साहित्य सर्जना के साथ समाज और राष्ट्र की सेवा की। जिससे ये आज भी एक आदर्श महापुरुष के रूप में हम सब के लिए सम्माननीय एवं स्मरणीय बने हुए हैं। 'गङ्गासागरीयम्' पं. विष्णुदत्त शुक्ल प्रणीत संस्कृत की एक आधुनिक अद्यतन कृति है। यह वस्तुतः एक श्रृंगार रसात्मक महाकाव्य है। कथा के परिकल्पित संभार में अप्रतीतत्व की प्रतीति होती है।

नायक नायिका की समासोक्ति प्रस्तुति के साथ ही दौत्य कार्य का भी काव्य में समावेश हुआ है। गंगा को नायिका, समुद्र को नायक तथा मेघ को दूत बनाकर प्रस्तुत किया गया है। गंगा और सागर दूत के माध्यम से एक दूसरे के गुण सौन्दर्य का श्रवण करते है और उसमें पारस्परिक आकर्षण उत्पन्न होता है।

मिलन की आतुरता में वियोग की वेदना भी नायक व नायिका को पीड़ित कर रही है। यही वेदना यदि रचना में पूर्व राग और विप्रलम्भश्रृंगार की स्थापना का कारण बनता है अतः काव्य में रस श्रृंगार के भी दर्शन होते है।

कथानक के अनुसार उत्तराखण्ड में नगराज के एक प्रतापी राजा थे। यद्यपि उनके यहाँ किसी प्रकार की न्यूनता नहीं थी, तथापि वे सन्तान के अभाव में अनवरत खिन्न रहा करते थे। एकबार उन्होंने बड़ी श्रद्धा और अविचल भक्ति के साथ वरुण देव की आराधना की। उन्होंने कहा कि मुझ में यह क्षमता नहीं है जिससे आप की कामना की पूर्ति हो सके, तथापि मैं तुम्हें एक उपाय बता रहा हूँ। यदि उससे चरण पखार कर, उनका पान कर लिया तो कामना सिद्धि सुनिश्चित है।

भूपति ब्रह्मा और विष्णु के पास गये। उन्होंने कहा कि तुम्हारी प्रार्थना विचारणीय है, परन्तु वह जल कमण्डलु से मुक्त किये जाने पर इतनी तीव्रता से प्रवाहित होगा कि आप उसे हाथों में ले ही न सकेंगे। अतः भगवान् शंकर की आराधना करो। जब कमण्डलु का जल छोड़ा जाय तो उसे अपनी जटाओ में धारण कर लें, तत्पश्चात् उनकी जटाओं से मुक्त जल की धार मन्द होगी और तुम उसे पान कर सकोगे। उन्होंने तपस्या द्वारा भगवान् आशुतोष को प्रसन्न कर दिया। उन्होंने उस पावन जल को धारण कर लिया। तब राजा उस पावन जल का पान कर सके। साधना के प्रभाव से उनकी रानी गंगोत्री ने एक सुन्दर कन्या को जन्म दिया, जिसका नाम जाह्नवी रखा गया। गंगा को यमुना की बहन भी माना गया है।

वरुण देव ने इस कन्या को शाप दिया कि वह एक स्थान पर स्थायी रूप से नहीं रहेगी, बल्कि निरन्तर गतिशीलता उसके स्वभाव का एक आवश्यक अंग होगा। परिणाम स्वरूप जन्म के उपरान्त वह चल पडी। राजा और रानी ने बहुत प्रयत्न

किया, परन्तु सब कार्य व्यर्थ हुआ। उन्होंने उसे प्रेम से पुचकारा और गति को अवरुद्ध करने के लिए बाधायें भी उपस्थित की परन्तु उसकी गति में विराम न लग सका। नगराज बहुत दूर तक उसे वक्षस्थल से चिपकाये चलते गये, परन्तु सब निरर्थक गया।

अन्त में नृप ने उसे अपनी माता वसुन्धरा को सोंपा और स्वयं विवश होकर लौट गये। शनैः शनैः कन्या की अवस्था भी ढलती गई। राजा ने सोचा कि अब उसकी अवस्था विवाह योग्य हो चुकी होगी अतः उसे इस बहाने से घर बुलाया जा सकता है। अन्य उपाय न देखकर राजा ने अब अपनी दूसरी पुत्री यमुना को भेजा कि वह उसे समझा-बुझाकर घर ले आये। यमुना तीव्रगति से बढ़ी और अन्त में गंगा को प्रयाग में पकड़ ही लिया। उसने बहन को प्रयत्नपूर्वक समझाया कि वह लौट चले, परन्तु प्रयत्न निष्फल हुआ। अब दोनों साथ – साथ आगे बढ़ी और सौचा कि वाराणसी में भगवान् विश्वनाथ से विवाह रचाया जाय। दुर्भाग्यवश भगवान् विश्वनाथ/शंकर ने उनकी ओर प्रेमदृष्टि से देखा ही नहीं। तब उन्होंने समुद्र में डूब मरने की प्रतिज्ञा की और ऊबड़ खबड़ मार्ग पर चलती हुई समुद्र तट पर पहुंची और समुद्र में डूबकर अपने जीवन को समाप्त कर लिया। मार्ग में अनेक सन्तों ने गंगा को समझाया परन्तु उन्होंने अपना दृढ़ निश्चय नहीं छोड़ा। उनका तो एक ही निर्णय था कि या तो भगवान् विश्वनाथ/शंकर पति बनेगे और या प्राणान्त होगा। इस प्रकार विशाल सागर ही उनका पति बना।

शेक्सपियर के दुःखान्त नाटक बहुत प्रसिद्ध है, परन्तु संस्कृत साहित्य में काव्य की सुखद समाप्ति अच्छी मानी जाती है। इस प्रकार कवि ने गंगा का सागर से विवाह करा के काव्य को सुखान्त बनाने का सफल प्रयत्न किया है।

भाषा शैली - 'गङ्गासागरीयम्' वस्तुतः एक प्रबन्ध काव्य है जिसमें गंगा जी के जीवन के एक अंश को सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया। पतितपावनी गंगा का व्यक्तित्व मानव कोटि में नहीं, बल्कि देव कोटि में आता है। उनके अवतरण से लेकर सागर मिलन तक की कथा इस काव्य में चित्रित की गई है।

प्रबन्ध काव्य की जो भी विशेषतायें हैं वे इस काव्य में पूर्णरूप से विद्यमान है। कवि ने अनेक ऋतुओं, उषःकाल, निशा, हिमवान् का वैभव, राज्य की स्थिति, पर्वतीय, नदी, नद, निर्झर, सरोवर, पशु, विंहग, वन, उपवन, सूर्य चन्द्रमा,नक्षत्र आदि का मोहक चित्र प्रस्तुत हुआ है। इस काव्य में इन चित्रों को बड़े ही मनोग्र शैली से वर्णित किया गया है। यदि कथावस्तु को आधार बनाया जाय तो कृति काव्य प्रतीत होती है, परन्तु यदि इसके लक्षणों को देखा जाये तो यह रचना महाकाव्य प्रतीत होती है। अतः उसे खण्डकाव्य और महाकाव्य के बीच की कोटि में रखा जा सकता है।

रस निष्पत्ति – प्रबन्धात्मक इस काव्य कृति में स्वाभाविक रूप से रसों की निष्पत्ति प्राप्त होती है-
विभावानुभावसंचारी संयोगात् रसनिष्पत्तिः। (काव्यप्रकाशः, उल्लासः-४, पृ. ८९[1])
अतः प्रमुख उदाहरण रस निष्पत्ति में इस प्रकार है-

वात्सल्य रस का उदाहरण-
शिशु विषयक रति स्थायी भाव, यहाँ शिशु की चेष्टा में उद्दीपन भाव आदि के कारण वात्सल्य रस की प्राप्ति होती है। उदाहरण दृष्टव्य है।

स्वकीयेन सा गौरवर्णेन गङ्गा, स्वभावेन वा चञ्चलेन स्वकेन।
अकर्षज्जनानां मनांसि प्रसह्य, सुदूरात् समीपात् समन्तात् समानम्॥ (गङ्गाबाललीला ५)

[1] संपादक – प्रो. शिवजी उपाध्याय, मम्मटाचार्यकृतकाव्यप्रकाशः, सरस्वतीभवन-ग्रंथमाला-वोल्युम 143, सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, प्रथम प्रकाशन, वर्ष २००२, ISBN: 81-7270-081-4

इस श्लोक में गंगा रूपी लड़की ने अपने गौरवर्ण के द्वारा तथा अपने चंचल स्वभाव के द्वारा दूर, समीप और चारों ओर के मनुष्यों को आकर्षित कर लिया।

नदीनां प्रवाहोद्भ्रवध्वान् तुल्या, मनोहारिणी कन्यकायाः गिरासीत्।
गतिश्चापि तस्याः प्रवाहेन तुल्या, क्वचित् चार्ववक्रा क्वचित् सैल वक्रा॥ (गङ्गाबाललीला ६)

इस श्लोक में गंगा रूपी बालिका को वाणी की तुलना नदियों के प्रवाह के समय उत्पन्न होने वाली ध्वनि से की गयी है और नदी के प्रवाह के समान उसकी गति कभी सीधी हो जाती थी।

यतः शैशवस्वल्प बुद्धिश्चकन्या, नवीनः पुनः सर्वमार्गः पुरस्तात्।
अतो बाल्यकाले विशेषेण तस्याः, बभूव प्रथभ्रंशं योगा अनेके॥ (गङ्गाबाललीला १२)

बाल्यावस्था में उस बालिका की बुद्धि स्वल्प थी। फिर उसने नवीन मार्ग ग्रहण किया। अतः बाल्यावस्था में उसके अनेक पथभ्रंश होने के योग उत्पन्न हुए।

वात्सल्य भावेन शिरस्स्पृशन्ती, चाश्वासयन्ति परिरभ्य कन्याम्।
विहाय मां क्वापि न गच्छ वत्से, सा प्रार्थयत् तां विनयेन भूयः॥ (प्रस्थानम् ६)

अद्भुत रस का उदाहरण

तं तादृशं चारूविचित्रवेशं, पूजार्हयालोक्य विनीत चिन्तः।
भावातिरेकात् प्रणिपत्य भूमः, सगद्गदं तं हिमावानुवाच॥ (गङ्गाकथारम्भः ४२)

राजा हिमवान् ने विचित्र वेषभूषा वाले, सुन्दर, पूजा के योग्य उसको देखकर विनीत चित्त होकर, प्रसन्न होकर और भावात्मक अधिकता के कारण उन्हें पुनः पुनः प्रणाम कहा।

दृष्टवाद्भुतं ते भगवन् स्वरूपं,श्रद्धान्वितं मुह्यति मानस मे।
मौनेन तस्मात् चरणे निवेद्मि, नानाविधान् स्वान् विनय प्रणामान्॥ (गङ्गाकथारम्भः ४३)

इस श्लोक में राजा हिमवान् ने भगवान् शिव के इस अद्भुत रूप को देखकर आश्चर्य प्रकट किया और प्रसन्नचित्त हृदय से उन्हें अनेक बार प्रणाम किया।

श्रृंगार रस का उदाहरण –

मृगी मृगं सारस सारसी च तथा कपोत्या सहिते कपोतम्।
वृक्षाश्रितां स्निग्धलतां पुरस्तात्, तत्रैव गंगेक्षत किन्त्वकस्मात्॥ (गङ्गाप्रस्थानम् २९)

इसमें श्रृंगार रस का वर्णन करते हुए कवि ने मृगी के साथ मृग, सारस के साथ सारसी तथा कपोत के साथ कपोत्या का वर्णन बडे ही सुन्दर ढंग से किया है।

तिष्ठत्यसौ त्वामनिशं स्मस्ती, कल्याणबुद्धिर्यमसन्निधाने।
आगम्य तां सन्नयमानपूर्व, राजोचितैस्तैस्सहितं प्रतापैः॥ (गङ्गासागरमिलनम् ३४)
तत्रागतं वीक्ष्य च वल्लभ स्वं, सम्पूर्णमाणं स्वमनोऽभिलाषम्।
हर्षातिरेकात् हिमवत् सुतायाः , पुस्फोर भूयो हृदयं सवेगम्॥ (गङ्गासागरमिलनम् ४४)
दैवात् यदा तन्मिलनं बभूव, सासीत् तिथिः श्रावण पूर्णिमायाः।
तस्मात् तयोः कान्तमानोऽभिलाषाः, पूर्णा बभूव शशिवत् समस्ताः॥ (गङ्गासागरमिलनम् ५४)

भक्ति रस का उदाहरण-

श्रेष्ठो निकृष्टो यदि वा यथा वा, समागतोऽहं शरणं त्वदीयम्।

अङ्गीकुरुष्व स्वजनं दयाभिः, विस्मृत्य दोषानथ यामकांश्च॥ (गङ्गाकथारम्भः ६१)

इस श्लोक में राजा हिमवान् भगवान् शंकर से कहते है कि हे भगवान् में अच्छा बुरा जैसा भी हूँ आपकी शरण में आया हूँ। अतः इससे भक्ति भावना प्रकट होती है।

जानासि सर्वाश्च मनोरथान् मे, किम् ते वदिष्यामि विमूढचेताः।
कुरुष्व नूनं मम मंगलं त्वम्, निवेदनं मेऽस्ति पदे त्वदीये।। (गङ्गाकथारम्भः ६२)

महाराज आप तो मेरे सभी मनोरथ को जानते हैं। इसलिये मूढ हृदय वाला में आप से क्या कहूँ। आप तो निश्चित् रूप से मेरा कल्याण कीजिए। मेरा तो आपके चरणों में यही निवेदन है। यहाँ भी भक्ति रस की प्राप्ति होती है।

दीनः कृपाभाजनमस्मि तोऽहं, त्वमेव मे केवल आश्रमोऽसि।
त्यक्त्वावलम्बं तव सक्षमं तत्, दयानिधे सम्प्रति कुत्र यानि॥ (गङ्गाकथारम्भः ६३)
त्वं दीनबन्धुर्जनवत्सलोऽसि, दीनोऽस्मि चाहं परमो विनम्रः।
पात्रं दयायास्तव सर्वथैवं, तस्मात् प्रभो तारय मामपायात्॥ (गङ्गाकथारम्भः ६४)
एवं कीर्ति गायतस्तस्यराज्ञः, कण्ठं रूद्धं गद्गदाभूच्चवाणी।
पश्चाद् भूत्वा भूपति र्विह्वलस्तः योगीशानां पादपद्मं पपात॥ (गङ्गाकथारम्भः ६५)
भक्त्या नमस्कृत्य महीपकन्या, यविन्मुनेराशिषयामयाचे।
प्रत्येतुमेनां सुधियो मुनीशः, स्नेहेन गेहे सा शशास तावत् ॥ (गङ्गाप्रस्थानम् ४८)

शान्तरस का उदाहरण -

तेजस्वितद्वीक्ष्य मुखारविन्दं प्रभांशुजलं विकिरन्तमग्रे।
देवा विमुह्यन्ति सुरालयेषु, कामर्त्य लोकेषु कथा नराणाम्॥ (गङ्गाकथारम्भः ३५)
त्रिलोचनस्त्रीणि विलोचनानि गतण्वरस्तानि निमील्य सम्यक्।
ध्यानस्थितश्चिन्तयति प्रशान्तः सर्वोदयं लोकहितं प्रश्नस्यम्॥ (गङ्गाकथारम्भः ३६)
रुद्राक्षमालाः परिधाम देहे, स्वीकृत्य शूलं डमरुं पिनाकम्।
दृढ़ासने शान्त विरक्त चिन्तः, आसीन आसीत् भगवान् महेशः॥ (गङ्गाकथारम्भः ४१)
पुनः यदा सा पुरतश्चचाल, श्री याज्ञवल्क्याश्रममाजागाम।
शान्तिप्रदं तं तपसा प्रपूतं, आलोक्य गङ्गा मनसाभ्यनन्दत्॥ (गङ्गाप्रस्थानम् ४५)

समीक्षा - गङ्गासागरीयम् पं. विष्णुदत्त शुक्ल प्रणीत संस्कृत की एक आधुनिक/अद्यतन कृति है। यह वस्तुतः एक रसात्मक महाकाव्य है। नायक नायिका की समासोक्ति प्रस्तुति के साथ ही दैत्य कार्य का भी काव्य में समावेश हुआ है। गंगा को नायिका, समुद्र को नायक तथा मेघ को दूत बनाकर प्रस्तुत किया गया है। गंगा और सागर, दूत के माध्यम से एक दूसरे के गुण सौन्दर्य का श्रवण करते है और उसमें पारस्परिक आकर्षण उत्पन्न होता है।

मिलन की आतुरता में वियोग की वेदना भी नायक व नायिका को पिड़ित कर रही है। यही वेदना यदि रचना में पूर्व राग और विप्रलम्भ श्रृंगार की स्थापना का कारण बनती है। अतः काव्य में रस श्रृंगार के भी दर्शन होते है। समासतः कथावस्तु, भाषाशैली, रीति, छन्द, अलंकार योजना, प्राकृतिक चित्रण, रसनिष्पत्ति, सामाजिक परिष्कार, समाज में वैचारिक क्रान्ति की आवश्यकता, परिश्रम में महत्त्व और अन्त में नायक नायिका का सुखद मिलन काव्य को भव्यता प्रदान करते हैं।